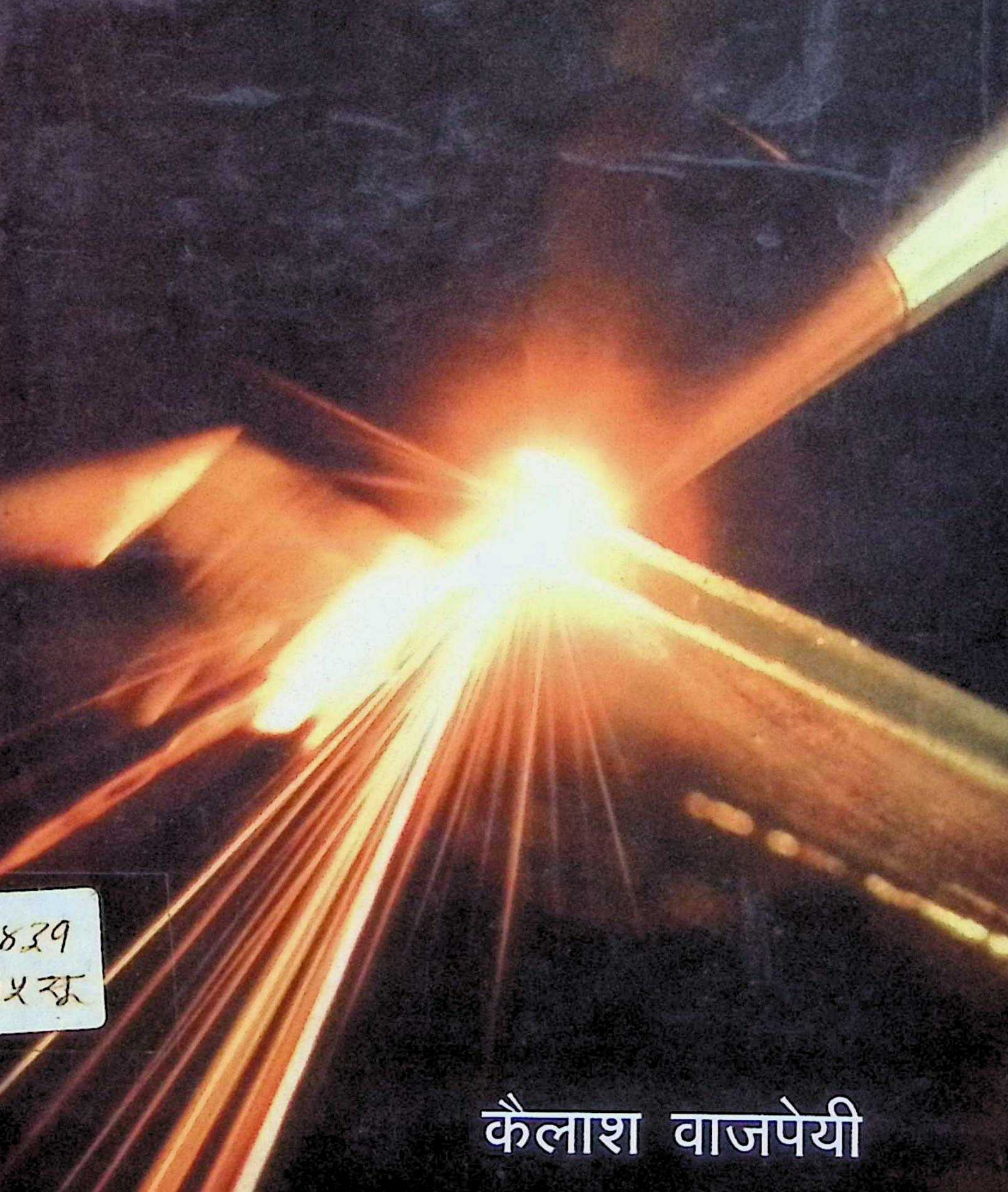
सूफ़ीनामा



कैलाश वाजपेयी

कैलाश वाजपेयी ने अपने चौथे कविता संग्रह 'महास्वप्न का मध्यांतर' में कुछ उत्तर दिए थे– ऐसे प्रश्नों के जो इतिहास से गुज़रते हुए कोई भी प्रबुद्धमना पूछता। 'महास्वप्न का मध्यांतर' में दुर्निवार द्वंद्व था। यह द्वंद्व इस संग्रह की रचनाओं में अगर अंशतः निःसृत हुआ है तो इसके साथ ही इन्हें एक संगति से भी भर गया है। सरलता के बावजूद इन रचनाओं की अनुभूति अधिक मूल्यवान है। कविता समय के सत्य में उतरकर समयातीत' को थाहने का रचनात्मक प्रयास है। जिस तरह हर क्षण में अंतिम क्षण भी शामि़ल रहता है, उसी तरह हर युग का यथार्थ अपने में आत्यंतिक सत्य की संभावनाएँ भी समोए रहता है। मानव–नियति के महत्त्व को समग्रता में समझने के लिए तटस्थता भी उतनी ही अनिवार्य है जितना कि संघर्ष या जूझना। यह विरोध वर्तमान के प्रति पूरी तरह चौकन्ना रहने की माँग करता है, मगर इसी के साथ एक तरह की अधहोशी को भी जन्म देता है, जहाँ युग–यथार्थ की कई तहें खुलती है, एकांत/अनेकांत का भेद या राज समझ पड़ता है। इस पड़ाव पर समसामयिकता या वर्तमान व्यतीत की सौगात को अनागत में प्रतिबिंबित करनेवाला प्रवहमान दर्पण बन जाता है।

यह कविता–संग्रह समकालीनता पर सर्वसामयिकता का सन्निधान है।

सूफ़ीनामा

सूफ़ीनामा

कैलाश वाजपेयी

प्रकाशक:
गांधी स्मृति एवं दर्शन समिति
5, तीस जनवरी मार्ग, नई दिल्ली – 110011

मूल्य : रू. 150.00

तृतीय संस्करण : 2004

प्रकाशक :
गांधी स्मृति एवं दर्शन समिति
5, तीस जनवरी मार्ग, नई दिल्ली–110011

मुद्रक :
ऑरियन्टल ग्राफिक्स
ए–10, नारायणा इण्डस्ट्रीयल एरिया
फेस–1, नई दिल्ली– 110028
मो. 9810410096, 51410023

SUFINAMA
Poems by **Kailash Vajpeyi**

क्रम

सत्ययुगं शनैरभ्येति जगत्सर्वम् ।

स्पंदन

कविता हर आदमी
अपनी
समझ भर समझता है
ईश्वर एक
कविता है

सूफ़ीनामा

घर, कपड़े, नौकरी, शहर बिना बदले
बिना प्रार्थना या उपवास के
तुम जो उतर चले आये हो
फ़ना होने इस समुद्र में
        इसे कोई नाम नहीं देना
        नामों में बड़ा खतरा है
उम्र भर तुम असीमा के वास्ते
सीमा में रह कर रोये हो।
(दुःख पैदा ही होता है बंदिश के अहसास से)
उम्र भर तुम सीमा की पीड़ा में कलपे–रोये हो
पाँसा फेंका है
सीढ़ियाँ चढ़े हो
फिर तुम्हें सीढ़ी के पास का साँप खा गया है
हर सीढ़ी के ऊपर साँप है
यह क्योंकि भीतर–भीतर तक साफ़ है
इसीलिए हद तोड़ कर कूद आये हो
स्वागत है

        फिर भी इस सब पर गर्व नहीं करना

फ़ख एक दूसरी तरह की ज़लालत है
छाती तक पानी में डूबा आदमी
डूब तभी सकता है
पानी जब कद से ऊपर हो जाये
तुम्हें अभी साँस आ रही है।
पानी में खड़े हो, आँच दे रहे हो।
तुम याददाश्त के शिकार हो
आँखों में जल रहीं बस्तियाँ
पूरी–की–पूरी दुनिया को आटा कर
एक नयी दुनिया गढ़ने का कस्द किये
यहाँ, वहाँ, पता नहीं कहाँ–कहाँ बारूद फेंकतीं
रोज़ नयी हस्तियाँ
ऐसे सब लोगों को तुम आकाश की तरह देखना
हिंसा की उम्र हमेशा कम होती है
इसलिए उनके खूनी इरादों को न टोकना
बड़ी–बड़ी किताबें हैं, बड़े–बड़े हर्फ़ उन किताबों में
बड़े–बड़े वायदे भरे हैं पूरी पृथ्वी पर
नासमझी की एक ही भाषा है और जिंदगी
ऐसा तमाशा
जिससे भाग लेने के वास्ते
जिसमें भाग लेना ज़रूरी है।
तुम भी बिना भाग लिये, भाग लेना

आदमी का खोपड़ा अजीब है
कुछ करो, भरो, खुशी, जीत, यश, बोरे कोहनूर के
खाली–का–ख़ाली ही रहता है
अच्छा किया तुमने जीते जी उम्र का मातम मना लिया
तुमने अच्छा किया
यों गरीब के घर में बेटा ज़्यादातर बूढ़ा ही पैदा होता है।
अच्छा किया तुमने वक्त रहते
सारे संकल्पों का गर्भ ही गिरा दिया
फिर भी इस सब पर खुश नहीं हो जाना
खुशी भी मियादी बुखार है
तुम अगर और कहीं और कुछ
हो सकते होते तो हो गये होते फिर
यहाँ नहीं होते
इसमें भी उसका शुक्र मानना
आग जले जिस्म का एक ही इलाज है
बिजली गिर जाये
वही धूपबत्ती धन्य होती है
जो अपने को खाये
खाती चली जाये।

बंधुआ मजदूर

अरे तू काहे को रोता है
यहाँ कुछ खत्म नहीं होता
छूट रही नहीं कोई संपदा
यों ही बेमतलब क्यों
कीचड़ बिलोता है।
भीतर से बाहर तक
ख़ाली ही ख़लीपन जगमग था
आग, हवा, पानी को तरस आ गया
शक्ल पा गया तू
कोशिश किये बिना
जोड़ लिये ठीकरे
छत डाल ली
जहाँ देह तक किसी और की मेहेर हो
डर मरने का बेमानी है
असल में दोष नहीं दो दीदों का
आदम की नस्ल
तीसरी आँख से कानी है।

रोज़ जाल बुनता है
सर धुनता तू/देख कर/चौपट
यह धंधा हड्डी का खाल का
चोला तो लेकिन
बचुआ हमेशा से
बंधुआ मजदूर है
काल का।

समागम

सभी कुछ ढहता है
अपनी रफ्तार से
सिर्फ नदी ही नहीं
पहाड़ भी
चूर–चूर हो कर बहता है
नीचे
नदी की छाती से लगा हुआ।

विकल्प वृक्ष

सुनते हैं कभी एक पेड़ था
रोज़ लोग आकर
दुखड़ा रोते उस पेड़ से

तरह तरह के लोग, दुख भी
सबके किस्म किस्म के
एक दिल पेड़ के कोटर से कोई
बोला
अँधेरे में आना,
अपना दुख यहीं बाँध जाना
उत्तर सवेरे मिल जाएगा
लोग सारी रात आते ही आते
चले गए
सुबह बड़ी भीड़ थी
पेड़ के नीचे सन्नाटा भी
ऊपर के कोटर से फिर वही
आवाज़ उतरी

काफ़ी से कहीं अधिक खुरदरी
हर दुख को पढ़ लो
फिर आपस में अदल बदल
कर लो
जिसे जो दुख अपने से ज़्यादा
बेहतर लगे
बड़ा गुलगपाड़ा मचा
दोपहर तक सब
भाग लिए
एक भी विनिमय नहीं हुआ।

तीसरा पाठ

सदी मर रही है
पता नहीं किस आसमान से उतर कर
एक अबाबील
तलाश कर रही है ठंडी चट्टान पर
गुमशुदा नीड़ की

तुम अपने–आपको बचाने की
कोशिश नहीं करना।

ये ख़ाकी हाथ
ये बरबस पड़ती हुई झुर्रियाँ
आँखों में शर्मिंदा
फँसी पड़ी नदी– शायद गोमती
आखिर कभी तो सूखती ?
रात है और यह सिफ़त है रात की
वह जब उतरती है
सब तरफ सिर्फ़ तब वही, वही होती है

जिस तरह फूल
जब खिलते हैं
हवा की ख़िलाफ़त के बावजूद
देते ही देते हैं सुगंध
द्वंद्व बेकार है
दलदल में हल नहीं चलाने का
शरीर से हो कर ही गया है

रास्ता
शरीर से बाहर हो जाने का।

सदी मर रही है
तुमको अफ़सोस है
तुम्हारे होते हुए
गिर पड़े अस्पताल
सन्नाटा बातूनी हो गया
सिर्फ कीड़े फले बेल में
दिन चढ़ाते सभ्यता धृतराष्ट्र हो गयी
तुमको अफ़सोस है
लेकिन अफ़सोस भी शरारत है
सूखे स्वप्न की
कभी जिसे तुमने शुद्ध बेहोशी में

बीजा था।
ठोंक–पीठ कर देख लेना
तुम कितनी दूर तक ज़िम्मेदार हो
होना तुम्हारी वजह से नहीं हुआ
न भी तुम अपनी वजह से नहीं होगे
एक साँस तक पर काबू नहीं
तब भी उम्मीद है बचोगे।
किसके लिए मगर ?

तुम्हारा वक्त
खारे पानी का वक्त है
एक–एक आदमी डूबा मस्तूल
किसी को बचाने की कोशिश में
डूबा मरना तो मरना
अपनी हिफ़ाजत
फ़िज़ूल है

काला हिरन

हम अच्छा होने की कोशिश में
अच्छे होते चले गये
गाँठ थी कि कम पड़ती हैं
रोटियाँ
फिर होती चली गयी रोटियाँ
भूख का बगीचा तहस–नहस करके
अब शांत लेटी हैं रोटियाँ
बाहर तो थीं ही थीं दूरियाँ
भीतर भी हैं अनंत दूरियाँ
हम जिन्हें मँझाने की कोशिश में
समझे जाने से भी गये
दिवस देख पाने के वास्ते
आँख चाहिए
तमस है यह देख पाने के वास्ते
भी आँख चाहिए
दोनों के बीच कहीं
हम शाम की तरह अपने में

ओझल होते चले गये
दुख का रास्ता भयानक है
सुख का तो और भी भयानक है
अपनी विरक्ति के
वन में भी
हम काले हिरन–से छले गये

मोमिन

पूजाघर पहले भी होते थे
हत्याघर भी
पहले होते थे,
हमने यही प्रगति की है
दोनों को एक में मिला दिया।

रोज़नामचा

हड्डियाँ
उसकी भी तो उसी रंग की थीं
जैसी सभी की होती हैं
खून भी उसी रंग का
जिस रंग का सबका
होता है
तुमने अभी जिसे
गोली से मारा है
उसकी सिर्फ़ एक ही ग़लती थी
वह ग़रीब
कातर तार–तार था
सामूहिक से अलग
झुका हुआ अपनी
निजी प्रार्थना में . . . . ।
पुलिस की शिनाख़्त से लगता है
उसका नाम
शायद फ़रीद था।

सूखा

अपने को छोड़ कर अपना कुछ भी न
था
तुम अपने–आपको निचोड़ कर
बेमतलब खर्चते
चले गये
नदी पर नदी पर बरसते चले गये
सब तरफ अब सूखा ही सूखा है।
तुम जो लुटे हुए लेटे हो
बक्त का थप्पड़ खा कर अधेड़ हुए
याद करो : हवा क्या उन दिनों सस्ती या
हल्की थी
इंद्रधनुष क्या रात में भी
निकलता था ?
अब जबकि अपना ही चला हुआ रास्ता
तुम्हारे पाँवों से विचलता है
क्या तब भी
ठुकराता था ?
ठौर ठीकरे का यों तो होता नहीं

कोई भी
तब भी क्या मछली या फूल देख कर
काँटे का ध्यान आता था ?
याद करो : तुमने किन–किन सपनों का
नमूना मँगवाया था
क्या प्रेम करने का
कोई वर्गीकृत विज्ञापन दिया था
अखबार में ?
या यों ही जैसे
आती–जाती हैं तितलियाँ
गुलाब पर
तुमको लगा था
भूख के चेहरे बहुतेरे होते हैं
सुगंध की नियति ही लुटना है
इसलिए दान बेहतर है

तुम उन दिनों खासे संपन्न थे
अभी–अभी केंचुल से निकले साँप की
तरह
दूब पीते
अपनी ही मणि के उजाले में टन्न
तुम अभिमन्यु थे जिसे

चक्रव्यूह से बाहर आना
भी आता था
ऊपर से ऊपर हो कर गुज़रते हुए
तुम कहा करते थे
हिमालय भी कैसी ऊँची ओछाई है
मरियल सी किरन छू
पिघलता है
नहीं पता था तुम्हें
तब,
बर्फ तोड़ कर पानी ही नहीं
लावा भी निकलता है
दिनों–दिनों हवा वज़नी और महँगी होती
गयी
सपनों का शस्त्रीकरण हो गया
गूँज गूँज चुकने के बाद
चुपने के पहले ही
विस्फोट हो गयी।
देह तो होती ही है दहने के लिए
जिस तरह सुख न रहने
के लिए
अब तुम सूर्यग्रहण की बात करते हो

अपने अधउजले सन्नाटे
से डँसे
याद कुछ न आने की पीड़ा में
हँसते हो
घर तुम्हें रोज बाहर कर देता है
तब भी भीतर कुछ घर नहीं करता।
रोज़ वही साँस
रोज़ वही नींद
खालीपन टाले नहीं टलता है
जिस तरह तारा मर जाने के बाद भी
आये चली जाती है रोशनी
रचना, न रचना तुमको अखरता है
मगर यह विकार है।
मोह का
बुख़ार तो मर कर ही उतरता है।

दोपहर का अख़बार

सड़क पर बस
कुचला एक आदमी रक्तस्नात है
मैं गुज़र रहा हूँ
हालाँकि मैं हूँ रफ्तार में
तब भी मुझे देर हो गई है
बिल भरने की यह अंतिम तारीख़ है
मैं देख सकता हूँ खून को
जो जून की
दोपहर में, ज्यादा लाल
दिखता है
मैं अगर बिल नहीं भरूँगा
मरूँगा तब, जुर्माना देता
फिरूँगा
रफ़्तार जड़ कर जाती है
आगे रोक है
'दोपहर की ख़बर' लिए
आ जाता है एक छोकरा
ठहरी हुई गाड़ी के शीशे तक

मैं बड़बड़ाता हूँ
'कुछ नहीं होता अख़बार में
मैं नहीं पढ़ता
अखबार'
वह सुनता नहीं सिर्फ़ मुग्ध
हेरे चला जाता है
उस चटख़ चिड़िया को
जो डोर से बँधी लटकी है
मेरी कार में
मुझमें कुछ होता है, उस बच्चे को,
माँ भारती के झुलसे बेहाल
उस साँवले खिलौने को देखकर।
यह चिड़िया लेगा ?
मैं डोर तोड़कर
मिट्‌टी की वह चिड़िया
"दे देने की कोशिश करता हूँ उसे
ष्आज नहीं कल
कल आना इसी वक्त
कल एक सुर्ख़ ख़बर होगी
अख़बार में।"

तकलीफ़

दुनिया में छः अरब लोग हो गए हैं
इसकी भी मुझको तकलीफ़ है
बढ़े हुए लोगों में एक मैं भी हूँ
इसकी भी मुझको तकलीफ़ है
पेड़ नहीं रहे दूर—दूर तक
इसकी भी मुझको तकलीफ़ है
मैंने खुद किसको छाँह दी ?
इसकी भी मुझको तकलीफ़ है
लोगों को रोटी नसीब नहीं
इसकी भी मुझको तकलीफ़ है
मेरी रोटी में घी भी शरीक है
इसकी भी मुझको तकलीफ़ है
सरे आम हत्याएँ होती हैं
इसकी भी मुझको तकलीफ़ है
मैं मारे जाने के काबिल क्यों नहीं
इसकी भी मुझको तकलीफ़ है
सब तरफ़ मेरे नरक ही नरक है

इसकी भी मुझको तकलीफ़ है
मेरे नरक की किसी को ख़बर नहीं
इसकी भी मुझको तकलीफ़ है
सबकी तकलीफ़ भी मेरी तकलीफ़ है
मेरी तकलीफ़ भी मेरी तकलीफ़ है
आखिर तकलीफ़ से छुटकारा क्यों नहीं
बिना तकलीफ़ के गुज़ारा भी
क्यों नहीं।

अन्तिम दौर में

नींद की नदी सूख जाएगी
खड़खड़ाएगी
साँसों की बाँसुरी
चिड़िया को उड़ना आता है चिड़िया उड़
जाएगी
होगा यही होगा।
तब फिर कुछ भी बचाकर क्या होगा ?
गिरा हुआ देश है
गिरे हुए देश में
खुलेआम राज करती है तस्करी
सच बोलने नहीं देती
युधिष्ठिर को
मसखरी
मंत्रपाठ करती है रंगारंग काँच पर
हाई–टेक विज्ञापन
लंगड़ ग़रीब को
मख़मली जूता पहनाता है

कितनी मादक हसीन जड़ता है,
नशे में स्वाँग भी सच दीख पड़ता है।
अपनी पकड़ से पकड़ा जाता है हारिल
स्वप्न में स्वप्न के ख़िलाफ़
कौन लड़ता है ?
तुम सोचते हो अन्तिम
दौर है गुज़र जाएगा।
पा ले कितनी ही ऊँचाई पाले
नीचे जब आएगा
पत्थर–पत्थर ही कहलाएगा।
ठीक सोचते हो तुम
इतिहास मुट्ठी भर राख है
वक्त के बदन पर मली गई
बदसूरती का धर्म ही बनावट है
दागे गए बांस की शिनाख़्त नहीं होती
न हवा का कोई फायदा
ख़ामोश बहुमत जो लेटा है
दुनिया भर के कब्रगाहों में
कल किसी महल का
उजाला था
भाप बन जाने के बाद

क्या पता चलता है पानी
गंगा था या गन्दा नाला था
ठीक सोचते हो
ज़िन्दगी, बहुत साम्यवादी है
सबके संग एकसा
आदिम मज़ाक करती है
तब भी चलते चलो
किए चलो ठीक
कर्म कभी व्यर्थ नहीं जाता ब्रह्माण्ड में।

मिट्टी

पृथ्वी तो किसी की नहीं है
तुम अपनी मर्ज़ी से कुछ भी कहते रहो
घर, मेरा दर, मेरा देश
सब सतही है।
गिरती, लुढ़कती, फँसी अपनी ही कक्षा में
पृथ्वी तो किसी की नहीं है
रोएँ की तरह तुम उगते हो
मिट्टी के गर्भ में छिपे कारखाने से
रोते चिल्लाते, हवा की धौकनी चल पड़ती है
तार उगलते हो तुम ऊर्णनाभ की तरह
चक्कर दर चक्कर
जाल बुनते हो, शिकार की तलाश में
खुद खाए जाने का सिलसिला
चलता चला जाता है
होती नहीं जीत मेघ आते हैं
होकर दीवालिया जाते हैं मेघ
यहाँ करो कुछ नहीं करो
होती ही चलती है यात्रा

पहियाए पैरों वाले तुम ——
तुमको लगता है तुम कहीं पहुँच
रहे हो, कहीं नहीं पहुँची पृथ्वी पर,
हर पदाभिमानी को यही रोग है
तभी भी विरोध में खड़े हो तुम
जिसकी गोद में पड़े हो
गर्म तवे पर जैसे पानी की बूँद
या बर्फ़ की सिल में
पथराया बंद बुलबुलार
कुल इतना ही वजूद है
तब भी तुम गाड़े चले जा रहे झंडियाँ
लाल, हरी जोगिया
भूलो मत ऐसा सा सपना
देखा था मोची के बेटे ने भी उसे
भूत शुद्धता का सवार था
कहाँ गए ? क्या हुआ उन तमाम
हिटलर चंगेजों का
खाद क्यों हो गए
खून बहाकर बेहिसाब, बेगुनाहों का
भाई रे !
जिस तरह बहती ही नदी, नदी होती है

गंदी या पाक नहीं होती
सब मिट्टी, मिट्टी होती है।

सिकंदर का जनाज़ा

कितना अजीब हो गया है
अपने ही घर में शरीर खो गया है
न कहीं कोई दुःख, न दुराव
उजली सरलता है
बुद्ध की प्रतिमा पर
एक बिना बाती का दिया जलता है।

भीतर से बाहर तक आकाश फैला
खुशबू की तितलियाँ
उड़ती हैं
लय टूटती है कभी कभार
पीली खबरों की पत्तियाँ
जब झरती हैं।

होने को कुछ नहीं रहा
न खोने को
लगता नहीं कोई इतिहास था
जिससे बिंध जाने के बाद
सब काँटे सीधे हो गए।

वह क्या यही सा
निर्वैर, निर्भव एहसास था ?
आख़िर कोई नींव क्यों रखता है ?
जानकर
यह धंधा अंधा है
सरिहन फँसता है बनने देता है सपने को
कोयल से क्यों नहीं सीखता सही
सुरक्षा गलत है बुनियादी तौर पर
संकट, मगर
ग़लत का सही पता
सिर्फ तब चलता है
जब दूसरे पहर
सिकन्दर का जनाज़ा निकलता है।

सेवक गुरु

तुम्हारी भाषा में
रोटी को क्या कहा जाता है ? मैंने
अपने परदेसी सेवक
से सवाल किया
उसने कहा आग
आग को हम रोटी कहते हैं
मैंने पूछा और आग को ?
उसने कहा
ईंधन को आग कहा जाता है
और ईंधन ?
ईंधन किसे कहते हैं ? मैंने फिर पूछा
पृथ्वी को पानी को,
हवा को आकाश को
उसने जवाब दिया
इसमें तो सारा ब्रह्माण्ड आ गया
उसने कहा ष्हाँष
क्या इसमें ईश्वर भी शामिल है ?
उसने कहा न

वह तो रोटी को
खा लिए जाने के
बाद जन्म लेता है।

बीमार पर्दे पर

जैसे कोई भूखा हो और
शर्मिंदा भी हो अपनी भूख पर
घबराहट होती है मुझे
अफवाहों से पंजा लड़ाने में
जन दीख पड़ते हैं
हड्डी हड्डी हुए
फिर
वन दीख पड़ते हैं
बधिया किए गए
फिर याद आती हैं
मारी गई पीढ़ियाँ
उन चिड़ियों चौपायों की
जिन्हें मेरी नस्ल के से
लोग खा गए
कसकर भोगी गई
फटेहाल नदियों की आत्मकथा
पढ़ता मैं

रोना शुरू अगर करूँ तो
कहाँ से
फूल जो खिले थे उरुवेला के
जंगल में कहाँ गए . . .?
क्यों नहीं होता अब हीरामन
क्यों उठती रहती हैं लपटें
समुद्र से
आसमान क्यों बहुत छोटा
बड़ा खोटा सा लगता है
कैसा अँधेर है
जो प्रगति इस तमाम
विकृति की ज़िम्मेदार है
उसी को लेकर नस्ल अपनी
सवाल कर रही है ——
जैसे हवा मोमबत्ती से पूछे

क्यों जल रही है।

ग्यारहवीं दिशा

होती है देह फिर
हो कर नहीं हो जाती है . . .।
कहाँ से आती है देह, कहाँ जाती है।
सुख सोख लेती है सब
दुख भोग लेती है
चले तो चलती जाये सौ साल पार
वरना यह वह फ़सल है खेती यम की
जिसके कटने की
पकना कोई शर्त कहाँ होती है।
    होना कुछ और, जीना कुछ और है
    नींद से पहले यदि याद रहे
    पूछना –
तुम्हें सही सूचना अगर कभी आयी तो
भीतर से आयेगी
        जन्म से ले कर अभी आज तक
बनीं मिटीं दस हजार छवियाँ हैं
छिपी कमियाँ तुम्हारी
यश दस दिशाओं में फैला फेन–सा

तुम्हें भास है ....।
भीतर की तरफ मगर जाती है
जो दिशा ग्यारहवीं
अब भी वहाँ आदिम अँधेरा है रात है।
बड़े–बड़े राजमार्ग हैं बाहर
दूर ले जाने, भटकाने को
ग्यारहवीं दिशा में जंगल ही जंगल
पगडंडी तक नहीं
छाती फट जाती है
सुन्न बियाबान में
अपने से होते ही सामना
करने से होता है जानना
जैसे भरना झरने से
खोने के लिए भी कुछ होना ज़रूरी है।
अधूरी–वधूरी का पता नहीं
जिंदगी तुम समेत ज्यादातर लोगों की
थिगड़ैल घटना है
जिसकी शुरुआत पर
सपना बचकाना
उलाहना, शिकायत फिर साथ–साथ
किसी शेखचिल्ली का

अपनी ही परछाईं के पीछे लपकना है।
चाहना हो चाहे चाह ना

आदत अधम अस्वभाव है
जन्मक़ैद वाले को लगता है बेड़ी ही पाँव है
हथकड़ी भी हिस्सा हाथ का।
प्राप्ति क्यों समाप्ति का
चीवर पहन आती है ?
सूरज ठंडाने के साथ–साथ
क्यों, कोयल क्यों भूल जाती है कूकना।
न कभी कोशिश की जानने की
न ज्ञान है
तब भी तुम दोहराये जाते हो
सरोकार है।
तुम धन्य हो, तुमको धिक्कार है।
किसने कहा था तुम माँगना
परिभाषा, पड़ाव फिर उपाधिहार, उपहार
अफ़सोस करने से पहले
टटोलना
तुम्हें ठीक सूचना उसी स्त्रोत से अगर
आयी तो आयेगी
जहाँ से कभी–कभी कविता आती है।

सद्भाव

शब्द बार बार हमें
बासी पड़े अर्थ की
कुब्जा सतह तक ले जाते हैं
विचार– घास ढका दलदल
विचार हमें तर्क की पेंचदार
खाई में
धक्का दे आते हैं
जबकि सद्भाव
खुला आसमान है
जो आदमी अपने भाई पड़ोसी या दोस्त
या किसी की भी
जलती चिता पर खिचड़ी पकाए
उस आदमी को आदमी
क्यों कहा जाए ?

समाधि वेला

आँख भी न बन्द हो
और यह दुनिया आँखों से ओझल हो जाए
कुछ ऐसी तरकीब करना
डूबना तो तै है इसलिए, नाव नहीं
नदी पर भरोसा करना।

तुम उन लोगों में हो जो
चीख़ से चल कर चुप्पी पर आए हैं
केचुल की तरह शहर छोड़ कर
जंगल से की है दोस्ती
जहाँ दाएँ–बाएँ की बहस नहीं तुम हो
हवाएँ हैं
पत्ता–पत्ता बेतार वाले तार से
यही खबर लाता है बार–बार
जिसकी जड़ जितनी गहरी से गहरी है
वह उतनी ऊँचाई चूम पाता है

शहर मगर अब भी, पीछा कर रहा है
तुम परेशान हो
दुकान तो बढ़ा दी तब भी सामान क्यों बिक रहा है

असल में तुम्हारी बीमारी दोहरी है
तुमको बुख़ार था और तुमा बुख़ार में शराब पीते रहे
जीते रहे ज़िन्दगी उधार की,
और अब भौंचक्के–हैरान हो
यह जो तुम्हारे गंधाते शरीर से
कभी–कभी उठती है बन कर सुगन्ध–सी
इतने दिन कहाँ बन्द थी ?
ज़रूर कुछ धोखा हुआ है
तुमको लगता है

यह सब स्वप्न में हुआ है
जब तक हो नहीं जाए
जुगनू भी कहाँ मानता है सवेरे को
असल में तुम गुज़रे
दौर के अँधेरे से ग्रस्त हो
और
यह अँधेरा खासा बुजुर्ग है।

तुम्हारे हिसाब से वह आदमी आदमी नहीं
शोर न मचाए जो निःशोक हो
जो सोच की दूरबीन से
घाव गिने पृथ्वी के
दुःख की प्रदर्शनी लगाए

इश्तहार दे रोग–जोग का
वह आदमी है विचारशील
वह आदमी है काम का
तुमने सिक्के का यह पहलू अभी–अभी देखा है
जलती नहीं कोई आग बिना ईंधन के
बीज जब मिटता है
अंकुर होता है
अभी–अभी मोर नाचा है गूँजी बाँसुरी
अमृत अभी–अभी बरसा है
अभी–अभी जला है
भीतरी चिराग़
धैर्य धरना
हर जन्म दूसरी तरह का
देहान्त है
हर जीत के आगे–पीछे शिकस्त
इसलिए सफलता से डरना
डूबना तो तै है इसलिए, नाव नहीं, नदी पर
भरोसा करना।

सौंदर्य बोध

अभी–अभी मैंने खिला
देखा है एक कमल
यह कमल पहले नहीं खिला
ऐसा यह कमल अब कभी नहीं होगा
आगे के उजले वर्षों में
कमल को नहीं पता
मैं कमल मुग्ध हो गया हूँ
खिलना मुरझाना
यों किसी कमल का
साधारण घटना है
रोज सैकड़ों कमल खिलते हैं
यह रहा होगा अंधापन
मेरी आँखों का जो
कमल में, खिलावट नहीं देख सका
कमल को कमल से
इतर नहीं लेख सका
तब फिर मैं क्यों कमल मुग्ध हो गया हूँ

जबकि कमल अपनी
मर्ज़ी से नहीं खिला
खिले कमल से
अभी
पता नहीं कैसे
मेरा
मेरा नहीं मेरी इन अंधी
आँखों का तार
मिल गया है
और एक और कमल
कमल और मेरी
आँखों के बीच खिल गया है

दूसरा पाठ

इस ख़त्म जैसे से खेल को
खेल ख़त्म होने से पहले ही रोक दो
यह खेल तुमको खा जाएगा
मिट्टी गवाह है
तुम जंगल बनने से पहले बीज थे।
अब रक्तभोगी काँटों का कारखाना तुम
भूल गए हो,
कोई एक चीज आँधी भी होती है
और हर आँधी
जन्म से जवान होती है
(तने तनेवालों को धराशायी करने के वास्ते)
बरसों से दुनिया
एक टूटा हुआ झुनझुना
कोशिश में हो तुम बजने लग जाएगा
मगर जो बना ही टूटा है उसे जोड़ना
कुछ वैसा है जैसे होता कहीं और है
और नाली में गिरा पड़ा लगता है चन्द्रमा

फाँस गड़ रही
तुमको लगता है एक झड़ी और बस
तुम्हारा सरोवर लबालब

भर जाएगा
पानी का लेकिन व्याकरण निराला है
बहे तो ठीक नहीं सड़ता है
गिरफ़्तार पानी से ज्यादा शर्मनाक है
घटना तुम्हारे जेल जाने की
तुम्हीं ने रक्खी थी ईंट
गढ़ीं दीवारें
तुम्हीं ताला डालकर बैठे हो भीतर सोचते
जल्दी ही दुख का देहान्त हो जाएगा
जैसे वह घायल मरीज़ हो
आदमी सफल हो असफल ग़रीब हो
सबको मलाल है
सुख का पता रोज़ क्यों बदल जाता है
तुम समझ क्यों नहीं पा रहे
यहाँ जो हो जाता है
होने के साथ ही नहीं भी हो जाता है
फिर भी बेताब दिख रहे हो

तुम एक काली दीवार पर कोयले से अपना
नाम लिख रहे हो
स्वप्न के भीतर स्वप्न
चल रहा है
नीचे दूर–दूर तक गरम दलदल है
इन्द्रधनुष निकला है
झूला पड़ा है
चिड़िया एक उड़ी चली जा रही
गाती आसमान में
जिसे अपने कफ़न की दूर–दूर तक
कोई फ़िक्र नहीं
तुम सोचते हो चिड़िया पागल है
झूला तुम्हारे लिए रहे जिन्दगी
चूल्हा औरों के वास्ते
कितना बचकाना तुम्हारा हिसाब है
स्वप्न इसी बीच टूट जाता है
यह है वह गणित
अगर ठीक बैठ तब भी उत्तर शून्य आता है
नहीं ठीक बैठे
तब भी–
उत्तर शून्य आता है।

आदिम सवाल

जब तुम पैदां हुए थे
तब नहीं पूछा क्यों
जब तुम मर चुके होगे
तब नहीं पूछोगे क्यों
फिर यह बीच की अवधि में
क्यों क्यों क्यों ?

अंधकूप

कुछ भी तो नहीं है रुका हुआ
न डाँवाडोल यह ज़मीन
न इस ज़मीन पर होती न होती हुई जिंदगी
दिनोंदिन लगातार
मरती इस देह पर
कहाँ–कहाँ पहरा बिठाओगे
भीतर ही भीतर खाता है काल
कंकाल तक को डकार जाता है।
तुम जिसे बचाने की खतिर बेचैन हो
उससे भी पहले ज़रूरी था जानते
कौन हो तुम ? आखिर
इस अंधकूप में
रही क्या होगी वजह आने की।
जलता है कभी कोई जुगनू
मरी घास पर
अँधेरे में उल्लू उम्मीदों की
आवाजाही है
चाक चल रहा है

जिसके बलबूते पर
मनाही है
उस अगम कीली की चर्चा चलाने की
जब कि सब तामझाम
सारी तरकीब
होनी ही चाहिए थी धुरी पाने की ।
तुम हो कि बरसों से एकालाप कर रहे हो
तुम किसी जेल में पड़े–पड़े
इतिहास लिख रहे हो उस सदी का जो
शायद आने ही नहीं वाली है,
साँप चल रहा है
सपने में लथपथ
किसी मोरनी का शव थरथराता है
रुक–रुक कर आती है साँस बादल को
बच्चा पहले–पहल घर में ही ठोकर खाता है
तुम चुप संताप कर रहे हो
और एक राख हुए फूल से
कहाँ गयी ? खुशबू की बात कर रहे हो
रोएँदार बीज उड़ा जा रहा
कहाँ ? जहाँ हवा ले जाये
मर्ज़ी किसकी यहाँ कहाँ भला चलती है

हर सुबह सबकी सुबह नहीं होती
न रात सब ही की रात
ऋतु है कि फिर भी बदलती है।
किसी तरह बरतो तुम देह को
उसका भी अपना पैमाना है
तुम ज़िद में हो तुम्हें
जाना नहीं कहीं कभी बुढ़ाना ज़रा
कुएँ में महानगर बसाना है
अभी–अभी बचपन था चला गया
कहाँ गया ?
दो दिन में मन क्यों उकता गया भोग से
अवाक् हो
क्या पता यह ज़िंदा रहने की इच्छा के
अंत की शुरुआत हो ?
अदबदा कर शायद इसलिए
उलट कर रहे हो, करो मगर
डरो नहीं
या फिर इस क़दर डरो जी–जान से
यह डर परीक्षित हो जाये।

जब तुम्हें पता चलता . . .

अगर, तुम्हें गर्भ में
यह पता चलता,
जिस घर में तुम होने वाले हो
नमाज़ नहीं पढ़ता
वहाँ कोई यज्ञ, होम
कीर्तन नहीं होता
कोई नहीं जाता रविवार को
गिरजाघर या ग्रंथपाठ में
अगर तुम्हें यह पता चलता
पेट के निदाघ और
पर्व के हिसाब से
अधेड़ बाप
कभी बनाता है
रंगीन काग़ज़ के ताजिए
ईसा का तारा
कभी दुर्गा गणेश
कभी अंधी ऊँचाई को थाहते
सिर्फ आकाशदीप

नीले, हरे, जोगिया
अगर तुम्हें यह पता चलता
तब तुम क्या करते
क्या माँ बदलते ?

महाभिनिष्क्रमण

हवा मेहरेबान है
आसमान हरदम की तरह आ समान
पतझर आया नहीं, फिर भी अधपका एक
समझदार पत्ता
बेझिझक झरने की तैयारी कर रहा है
तुमको खुश होना चाहिए
ख़त्म हुआ इम्तहान
मगर तुम उदास हो
तुम्हें डर लग रहा है,
कहाँ से शुरू करे कोई तुम्हारे दुख की पड़ताल ?
तुम जब से हो होश में नहीं हो,
एक बड़ी लम्बी, ओछी दुर्घटना है
जोड़–तोड़, भाग–दौड़ वाली तुम्हारी यह जिन्दगी,
रोज तुम चाहों की चमकीली पन्नी से
एक बड़ी सुन्दर नाव बनाते हो,
फिर उसमें इतने पत्थर इरादे भर देते हो
तुम्हारी वह नाव डूब जाती है

और जिस समुद्र में समा गए सैकड़ों
रंजीदा तुम लौट आते हो
उसकी लहरों को कोसते
फिर सुबह होती है
फिर तुम बाज़ार से काँच लाते हो
मर–खप कर शाम तक एक महल बनता है
जैसे ही होती है रोशनी
कांच आँच देने लग जाता है
और देह झुलसे तुम, भागते हो बेसाख्ता
शायद कपास की तलाश में

बिना यह याद किए
हर दुख सच से सपने की भिड़न्त है
कपास और काँच और काग़ज़ की
इस अन्धी दौड़ में, कहावती कुत्ते की
पूँछ हो गए हो तुम
फूँक–एक छिदहे गुब्बारे की
तुमको लगता है
अब होने वाला है फ़ैसला
उतरेगा कोई देवदूत
एक और पंख जोड़ देगा तुम्हारी उड़ान में

चन्द्रमा ताली बजाएगा
चिड़ियाँ रोक देंगी बुनना घोसला
तुमको लगता है कल होने वाला है
फ़ैसला
कल नहीं कल होने वाला है
होने तो कुछ नहीं वाला है

पृथ्वी की उम्र के हिसाब से
कितनी भी लम्बी हो कोई ज़िन्दगी
छोटी है
और शान्त–काम आदमी ज्यादा खतरनाक
अपने बारूद से
बेखबर उसका मन ऐसा तहखाना है
जो कभी भी फट सकता है
दरअसल उम्मीद एक मर्ज़ है और
मन वह महामारी
जिसकी वजह से हुई हैं लड़ाइयाँ
होती हैं
जलती औरतें, कटते जवान और
देश, झण्डे
बँटते फटते हैं

अगर गिरे शहरों या मरे लोगों का
नाम इतिहास है
तब उसके पीछे,
एक मन बिगड़े, आशालु
राजा का हाथ है
तुम न तो राजा के लड़के हो
न किसी महाजन के लाड़ले
तुम क्यों भयभीत हो
अगर ठीक–ठीक ठीक हो,
पानी सही मायने में अगर पानी हो
पात्र नहीं चुनता
कोई कहाँ उसे कयों भर रहा है
किसमें ?
सवाल नहीं करता
पानी की नियति ही तरलता है
नहर हो, हथेली, झील, पोखर हो
ठोकर नहीं लगती कभी पानी को
पतझर अभी दूर है और तुम उदास हो
उस नदी के लिए जो
अपनी ही भँवर में डूब गई ?
बाढ़ भर चुकी है और तुम उदास हो

उस कुएँ के लिए जो जन्म से निपानी था ?

तुम अभी कच्चे हो
आधी प्रार्थना तुम्हें आती है
आधी में चर्खा
व्यापार चल रहा है
भले लौट जाएँ
सब चिट्ठियाँ
पड़ा रहे रोचना
राखियाँ बिन बँधी
कभी कोई द्वार न खटखटाए
शोक समाचारों से
बचने के चक्कर में
तुम्हारे भीतर का शरणार्थी
पता नहीं कहाँ
क्यों अन्तर्धान है लापता
सोचना तो इस तरह
सोचना
पूरा कहाँ होता है कोई सोचना
यहाँ सभी का स्थायी पता
श्मशान है

निर्जरा

तुमसे तुम्हारा छुटकारा हो जाए
ऐसा कोई शीशा तलाश करो
बहुत दूर–दूर तक फैला है
साम्राज्य झूठ का
कल तक अँधेरा तंग करता था
अखरता है अब उजाला भी
छाया पड़ती है बनती,
क्रम नहीं टूटता
जब जिस्म ही बेमानी है
क्या मतलब होगा उस नाच का
जो जिस्म की
एक खाली पहचान है
नाम का विनाश करो
तै मर जाना है
मरने का सच्चा अभ्यास करो।
पृथ्वी के भीतर–बाहर
आरेदार पहिया चलता है
डाल पर

मचलता है जो गिरकर
पाल में पकता है
बचता नहीं कोई जो बचता है

आख़िरी मछली

कुछ भी तो काम का नहीं है
यह दस तरह फटी बाँसुरी
थर थर थर काँपते दोनों हाथ
सुन्न उँगलियाँ
तुम उखड़ी साँस से
बासी रागिनी
कब तक दोहराओगे
वह सुननेवाला नहीं।
आधी के आसपास रात को,
तुम जाग जाते हो
ष्या निशा सर्वभूतानांष कहते हुए
माला उठाते ही
मेला लगने लग जाता है
धने केश उड़कर आते हैं किसी देश से
बड़ी–बड़ी आँखों से उठता है ज्वार
याद–एक सर्पिणी
फन उठाती है

माला गिर जाती है समुद्रफेन पर
माया के नागपाश में मूर्छित संयमी
बन्द आँखों के आकाश में ।
दूर–दूर तक उजाला नहीं
भरी हरी झील में
सिर्फ़ एक मछली है
तुम कह सकते हो अकेले हो
खा गए बाकी को डगन जाल वाले
भयभीत सहमे तुम, चिपके तल से
गिन रहे दिन
घास, काई, खाकर इस आस में
फँस नहीं पाओगे काँटे में
भूलो मत यह रुका पानी है और यहाँ
कोई देश निकाला नहीं

कलियोग

तुम सिर्फ़ ग़लती करने के योग्य हो
सही तरह करना
कम ग़लत न रह जाये कोई ग़लती
मिल जाये जब कोई ठीहा था मचिया
पूँछ की लोच के मुताबिक
मत झाँकना अपने भीतर
वहाँ दुबकी पड़ी आदिम तरंग पर
हो सकता है कुछ अक्स हों
ऐसे लोगों के
जो सचमुच मूल्यवान थे
जिनसे भयभीत हो कर
तुमने लंबाई बढ़ायी है पूँछ की,
पहले राख डालना
हर ऐसे अक्स पर
या फिर उलीचना
तूफ़ान आने से पहले तरंग को
नाहक तंग नहीं होना
अपने कद से

छोटा आदमी भी
बड़ा दीख पड़ सकता है शाम–वाम तक
अगर रोशनी का कोण ठीक–ठाक हो।
भरपूर करना प्रहार
यों दूसरे पर की गयी
(हर चोट सही अर्थ में आत्महत्या है)
मत झिझकना मगर
आधी दूर जा कर
डूब नहीं जाना पश्चाताप में
बचने के लिए संपूर्ण आत्मघात से
रहते–रहते यहाँ केंचुल चढ़ जायेगी दंभ की
उसे तुम कर्त्तव्य कह कर पुकारना
जो नफ़रत का उजला नाम है
साफ़–साफ़ करना इनकार
क्रोध, ईर्ष्या और काम को
(श्रुति लाख चीखे–स्वीकार ! स्वीकार !)

और जब औरों पर निर्णय देने का वक्त आये
रौंद डालना सारा आसपास
मत पड़ना कच्चे सच के जंजाल में
खरा झूठ बोलना

नरक से बचने का एकमात्र ढंग है
आदमी गिरे शुद्ध पाप में।
धपसठ की ठंड से
तुम्हारा बदन ज़रा अकड़ेगा
निकल चले जाना तब किसी बड़े बँगले में
जहाँ गर्मी सुरक्षित है उन महामहिमों के लिए
जो पहले से ही गरिष्ठ हैं।
अगर सूर्यास्त का डर लगे
झट एक तारा लटका देना
बाँसुरी अँधेरे में फेंक कर
वह ककहरा ही भुला देना
जो तुम्हारी सही शिनाख्त था।
हो सकता है यहाँ
तुम अपने को कुछ बोदे लगो
तब बोपदेव की कहानी दोहराना।
ज़्यादातर लोग मन से संपन्न हैं
तुम भीतर–भीतर तक दरिद्र चोबदार
फिर भी कहना यही तुम बादशाह हो
और हाँ
दो शब्द लगातार बोलना
आम आदमी/इंसानियत

यही तो वह घास है
जिसे चर कर तुम साँड़ हो सकोगे।

जंगल की कविता

मैंने तो पहले ही कहा था
जंगल में नहीं जाना
जंगल तुम झेल नहीं पाओगे
तुम नामवालों की दुनिया में उपजे हो
जंगल से सब कुछ निर्नाम है
पत्र तो आते हैं ढेर–ढेर
पर कोई पेड़ यह नहीं कहता
मैं पत्रकार हूँ फलाँ पेड़ पण्डित
फलाँ मुसलमान है।
तुम शहरी ज़हर के आदी हो
जंगल को सिर्फ प्राण–वायु
बिखरना आता है
कोई हड़ताल नहीं होती मधुछत्तों पर
प्रेम खुलेआम होता है।
अलग–अलग मौसम में लिखते हैं
अलग–अलग कविताएँ –फूल
मगर ऐसी कोई घोषणा
होती नहीं जंगल में

यह कविता सादी है
यह संस्कृत
यह कविता शुद्ध जनवादी है
और तो और
वहाँ जलन नहीं होती करील को
ऊँचाई देख कर सागवान की
सरपत–पी जाता है आँधी
    शंकु गिरता धड़ाम से
    रुकती नहीं झंकार तब भी झिल्ली की
    खेल चलता निःशोक
    खेल तुम खेल नहीं पाओगे
    तुम जंगल झेल नहीं पाओगे

सत्ताइस वर्ष बाद फिर छतरमंजिल

बीता हुआ आदमी
बीते हुए दिन याद करता है
चश्मे का नंबर बढ़ रहा लगातार
इतिहास पढ़ने से डरता है
सब कुछ पर राख दीख पड़ती है
एकाएक दर्द
तुम यहाँ अब अगर लौटे भी
तब भी तुम क्या वापस आओगे ?
उम्र का दबाव
नब्ज़ की सांय न सुनने की, कोशिश करता है
छः अरब आदमी तीस अरब घोड़ों पर चढ़े
कहाँ जा रहे हैं छः अरब आदमी
आदमी सवार हैं या घोड़े ?
वक्त से पहले कोई भी उत्तर कहाँ आता है
टाप सुन पड़ती है
आँख मूँद लेता है दूर
आँगन की कच्ची दीवार
गिर चुकी है घर के बीच से

पगडंडी निकल चली गई है नदी तक
उन दिनों नदियों में
जल हुआ करता था, शाम की सभा में तारे सारे
इतराते थे
उतना, वैसा पानी अब क्यों नहीं होता
नदियों में
औंधी एक नाव पड़ी रहती थी
वहाँ रेत पर
बूढ़ा मल्लाह जाल बुना करता था
बैठकर पीठ पर नाव की
आरपार जाने की ज़हमत से
पार हो चुकी थी नाव बूढ़ी
यह कहना मुश्किल है
मल्लाह ज़्यादा बूढ़ा था या वह औंधी नाव
बार बार पार कर सब नावें
एक दिन बूढ़ी हो जाती हैं
तन चूरचूर होने के
क़रीब है बीता हुआ आदमी
समझता है
वहाँ राजधानी में कई
राजधानियाँ

एक दूसरे से भिड़ी पड़ी
बुलाती हैं
व्याधि मानकर हर
उपाधि को

बरजता है।

फ़क़ीरी तान

हम तुझे कब से ज़हर नहीं दे रहे ?
चाह रहे तेरा दम टूट जाये
ईश्वर तू पहले भी कितना अकेला था
ईश्वर तू आज भी कितना अकेला है।
तूने हमें देह दी / उम्र भर भीतर–भीतर तक साथ

रहा
देख तो हमारी भवदीयता
हमने तुझे घुन कहा, अंफ़ीम कहा, घास कहा।
बरस–दर– बरस हम अपनी जिह्वा के उत्पात को
तेरी खुशी का पैग़ाम कहते रहे
खून से रंगे हुए हाथ ये
हमारी हविश का ही परचम थे
जिन्हें हम राम / इस्लाम कहते रहे
कभी 'या अली' के बहाने
कभी वैदिकी हिंसा की आड़ में
हमने उपहास किया तेरी ममकार का।
हमारे ही मद के प्रताप से
ऊँची हुई मीनार 'बेबॅल, की / डूब गयी द्वारका ।

ईश्वर, तू जितना पहले अकेला था
उतना तू ईश्वर, आज भी अकेला है।
गोल अँधेरे में चक्कर खाते हुए
हम जिंदा आधे मरे लोग
हमने ऐलान किया एक दिन
'दृश्य पर खत्म हो जाती है जिंदगी'
(हमारी तलाश में हमारा अँधेरा भी शामिल था)
दृश्य भी खालिस न निकला तब
हमने बहाना बनाया 'प्रतिदृश्य' का
जहाँ न सच सही है न सपना सतही
हमारी काई दुनिया नहीं ही हो सकती थी
तभी तो नहीं है।
तू कहाँ होगा ईश्वर/क्यों होगा तू
इस सभ्य तर्क पर,
हमने तुझे कोश से निकाल दिया
(सभ्यता हमारी पुश्तैनी बीमारी है)
पारा बिदकता है जैसे आग से
हमने अनर्थ किया तेरी करुणा का
हम खुले दिल से मज़ाक करते रहे
तेरे करम के कायल हम
रोज़ किसी विवश को हलाल कर
झटके के साथ अरदास करते रहे

(मन अपना खासा प्रचंड भिखारी है)
ईमान–धरम तो कोई था नहीं
छेद किये हमने/लाखों सूराख आसमान में
जल जला डाला सब भूमा का
हवाओं में तेजाबी गाँठ दी
हमें कोई हक़ नहीं तेरा/ कहलाने का
हमारी विनती का भी वही अर्थ है/जो बम गिराने का।

विनय वेला

आसपास दूर
मीरा बज रही है
डूब रहा है क्योंकि
अंतिम मस्तूल
आँखों में पड़ पड़कर धूल
साफ़ हो गया है
जीना जिसे कहते हैं
कभी भी नहीं हुआ।
भयंकर बहाव था
है
जिसमें पाँव रखने की
कोशिश में
बह गई उम्र
रेत बनकर
पानी हमेशा से
अलगाव था
कई पर्दे फटे
उतरे छिलके कई

अब रास आता है
गाना मीरा का
कैसे महल जेलखाना
लगने लग जाता है
काश कुछ और घटे
कोई आए और
आकर सब लूट ले
मन अपना
अब ज़हर खाने को राज़ी है

भव रोग

धुआँ, कहीं लौ, कहीं आँच कहीं
कुछ नहीं राख में दबी पड़ी ऊष्मा
सब तरफ़ तरह–तरह लगी हुई आग से
खुद को गुज़ार लो
सोना तो होना ही होना है।
देह का इतिहास कहता है
वैसे इतिहास
बनने के पहले भी हुआ करती थी देह
फिर भी कहने को कहते हैं इतिहास कहता है
इस बंद पिंजरे में एक मौजी
अपनी मर्जी से
ख़ासी बेदर्दी के साथ रहता है
एक–एक तीली ढीली पड़ जाये–
पिचक जाये पिंजरा
इससे पहले, किसी तरह
उसके वहाँ होने का राज़ जान लो
नींद तो आनी ही आनी है।
सीपी पानी में होती है

मोती सीप में
न तुम्हें मोती का पता है अपने गहरे
में न पानी का
खोल पड़ा रह जाये रेत पर
इससे पहले, चूंक की क्षमा माँग लो
मार तो खानी ही खानी है।
पृथ्वी भी उतनी
अकेली न होगी आकाश में
जितना अकेले का यह आना–जाना है
बर्फ़ कब बनी नदी बही कब विलीन हुई
सागर का बादल में बदल जाना बता पाना
गुच्छा पहेली सुझलाना है
यहाँ किसी तरह का कोई दावा
अपने ही पैर का अँगूठा पकड़कर
खुद को उठाना
हवा में झुलाना है।
जान कर न मानना
या मान कर न जानना
दोनों भव रोग हैं
इसलिए
कभी, कहीं किसी के भी

आड़े नहीं आने की
कला जान लो
कालिख तो धोनी ही धोनी है
निरंजन तो होना ही होना है।

फटे पेड़ के पास

तुम्हारा तना ले गए लोग
छोड़ गए मिट्टी से जुड़ा ठूँठ
पानी की धरती में
बन्द बहती है चादर
ओढ़कर
जड़ गाना गाएगी
जल्दी ही घाव पर
कोंपल आ जाएगी
कई काफ़िले नर्म रुइए
गुज़रेंगे आसमान से
वर्ष पर वर्ष पर
तुम फिर पूरे
संपन्न
झूमोगे
शाखों के सरगम पर
पक्षी
आसावरी गाएँगे
सिर कटे धड़ के साथ

यह नहीं होता
काश आदमी पेड़ होता

सत्ता वसीयत

उस क़स्बे में ज्यादा से कम
नहीं रहते थे लोग
होते हैं लोग तब
मरते भी हैं
बूढ़े होकर या फिर बैठे–बिठाए
बहरहाल
कस्बे में सिर्फ़ एक आदमी
कब्र खोदने के पेशे में था
काम ठीक–ठीक करता था
इस क़दर ठीक कि हर रात को
कफ़न चुराकर ले जाता था
लोगों को पता था फिर भी चुप रहते थे
मुर्दे का मामला ?
कोई क्यों बोलता
वह जोकि औरों की कब्र खोदता था
जैसाकि होता है
वह आदमी भी आख़िर
एक दिन मर गया

पुश्तैनी काम था
बाप के मरने के बाद
अब वही काम, बेटा करने लगा।
लोग बहुत खुश हुए
मुर्दे मुँह ढँक कर तो सोएँगे
बेटा मगर बाप का भी चचा निकला
वह क़फ़न की चोरी ही नहीं करता
रात में
मुर्दे को फिर दर पर रख आता है
मुर्दा जिस घर से उठा था

तसव्वुफ़

कोशिश करने की
कोशिश भी कौन
करे
मन मर जाने के
बाद का
जीना
कश्कोल नहीं होता।

बक़ा

बूँद–बूँद बनकर
बार–बार
बीच में खो जाती है धार
बड़की नदी से
मिलूँ
तो समुद्र मिले

मुर्शिद मुरीद

कहते हैं कभी कोई बूढ़ा फकीर था
बहुत बहुत निराला बड़ा कीमती
दुनिया में कीमती हमेशा कम होता है
सीमा पर था उसका झोंपड़ा
चिड़ियों के स्वप्न से बुना गया
फ़कीर जब गाता कभी रात में लगता था
अँधेरे में इन्द्रधनुष उगने ही वाला है
राजा को पता था फ़कीर मूल्यवान है
एक बार जब सूखा पड़ा
राजा दौड़ा हुआ आया बोला फ़कीर से
'दुआ करो।'
फ़कीर उठा जंगल में गया
नीली चट्टान पर पैदा कीं उसने चिन्गारियाँ
फिर जोर–जोर से मंत्र पढ़ा
संयोग से विपत्ति टल गई
जैसा कि होता है, वक्त
राजा फ़कीर दोनों को खा गया।

राज्य बाढ़ में डूबने लगा
मंत्री दौड़े फ़कीर के मुरीद से दुआ माँगने।
मुरीद उठा जंगल में गया
नीली चट्टान वहाँ थी नहीं डूब गई थी
पीले पानी में।
मन ही मन उसने मंत्र पढ़ा
इस बार फिर अचंभा हुआ बाढ़ घटने लगी
काल के बहाव में मुरीद भी बह गया।
अब उसकी जगह शिष्य बैठने लगा
वर्षों पर वर्षों पर वर्ष बीत गए
तभी उस राज्य में भयंकर पाला पड़ा
कई मौतें हुई, खड़ी फसल गल चली
लोग दौड़े आए उस सिखुआ से
विनती की कुछ करो
शिष्य ने आँखें बंद कीं और बुदबुदाया
'मुझको जंगल में जाना तो आता है
लेकिन चट्टान कहाँ होगी
नहीं पता
चिन्गारी पैदा करना ? वह तो मेरे
मुर्शिद को भी नहीं आता था
रह गया मंत्र : सीखा तो था मैंने

लेकिन नहीं पता
जो भूल जाता है वह अपना भूल गए होना
भी भूल जाता है
इस तमाम गफ़लत के बावजूद
ईश्वर तू सचमुच अगर हैं
तो नई आई यह विपत्ति टाल दे'
इस बार भी चमत्कार हुआ
लोगों ने देखा कुहरे का कंबल फाड़कर
सूर्य निकल आया है

तब उस सिखुआ फ़कीर ने
लोगों ने विनती की
जब मैं मर जाऊँ मेरी समाधि पर
लिखा जाए–
प्रार्थना की कोई भाषा नहीं होती
इबादत का कोई वक्त नहीं होता
अरदास का कोई ढंग स्थल तो बिल्कुल नहीं होता
सोते जागते उठते बैठते कभी भी
हो लेती है प्रार्थना। असल में प्रार्थना,
भीतर की दीवारों से पार पाकर
बाहर की दीवारों के पार जाना है।

समापन

मुझको तुम याद मत दिलाना
याद मत दिलाना तुम
पृथ्वी पर मैं भी कभी आया था
और यहाँ मैंने
नीड़ भी बनाया था
बहुतेरे नाम थे
जंगल के आसपास
धुएँ से लिखे हुए
जगह–जगह अग्निकीट
गाना सुलगाते थे
तब जबकि आँधी में
उड़कर श्रेयस्कर था
अपने ही पंखों के पार
तैर जाना
मैंने अपने को बचाया था
तो भी मैं
बचकर भी बच नहीं पाया था
आँख मूँदकर घुस गया था

अंधों की भीड़ में
भीड़ का मतलब ही होता है
अंधों की
नीड़ और भीड़ दोनों के नियम
क्योंकि एक हैं
आश्वासन देते हैं
दोनों सुरक्षा का
मुझको भी सम्मोहन हो गया
जिस तरह रात में
पेड़ खो देते हैं हरीतिमा
आँखें ये मेरी
रहते हुए भी चली गईं।
याद मत दिलाना तुम
प्रण मैंने किया था
दरकी दीवार पर
दर्पण जड़ने का
जिसका चिराग़ खुद गुल हो
बड़ा शौक होता है उसे
जनसुधार करने का।
सिर फिर लिया था,
तभी तो वचन दे दिया था

मछलियों को
मैं डूबने से बचाऊँगा
कौन यहाँ किसे बचा पाता है
जरा उँघाई आई नहीं
कृष्ण को भी मार दिया जाता है
कोयले की खान में
कमल बन खिलने की ज़िद में
ऐसा हुआ
काले पड़ गए पंख
हंस को
उड़ना दुश्वार
हर पानी काला पानी हुआ।
अगर मुझे निर्णय ही लेना था
तो अपने आपको
तिनके की तरह
फेंक देना था
हवा के भरोसे पर,
केंचुल ही नहीं छोड़ देनी थी
ज़हर का बनना भी
रोक देना था
कुछ भी करने–कराने से

छुट्टी पानी थी।
कुछ नहीं होता
फोड़ा चीरने–चिराने से
कोड़ा हर हाल़ में
अपने पर पड़ता है
सड़ता है आदमी
यह अलग बात है
उसके भीतर का
आकाश नहीं मरता।

अन्ततः

शरीर सहयोग
नहीं करता
अन्यथा
कोई क्यों मरता

ध्यान

जब कुछ भी करके भी कुछ नहीं मिलना
राख होना है
जब कुछ न करके भी कुछ नहीं मिलना
राख होना है
तब फिर ध्यान भी क्यों करना ?
भिक्खु ने सवाल किया
जो काम तुमसे
पहले भी हो रहे थे
जो काम होते चले जाएँगे
तुम्हारे न होने के बावजूद
वे काम कम से कम तुम्हारे नहीं हो सकते
और
जो काम तुम करना नहीं चाहते
याकि
जिन्हें तुमने करना नहीं चाहा था
लेकिन तुम करते हो
क्योंकि वे तुमसे करवाए जाते हैं
ऐसे सब काम तो

और भी तुम्हारे, नहीं थे, नहीं हैं, न हो सकते हैं
लेकिन वह काम जो
सिर्फ न करने से आता है
और जिसे करना नहीं आता करने की कोशिश करने
के कारण लोगों को
वही एक काम है जिसे ध्यान कहते हैं
ध्यान का मतलब है भिक्खुओ।
शीशे में शीशे की, कोराई देखना
अपनी परछाईं, नहीं देखना।

उभय तर्क

कमज़ोर होने
का एक ही लाभ है
मार खूब खाने को
मिलती है
देखा नहीं सूखी
घास को
कितने धड़ल्ले
से जलती है

विमर्श

पृथ्वी के भीतर के कारखाने में
क्या हो रहा है ?
हमको नहीं पता, नहीं पता हमको
किस भाषा में होती है घोषणा
अब फटो बीज– वक्त आया अँकुआने का
यह जो चौतरफ़ा हमें घेरे है
फेन का ग़लीचा–आकाश
कैसे बुन गया
हमको नहीं पता
हमको नहीं पता जब हम नहीं थे
तब हम कहाँ थे
हमको नहीं पता
शोषित था द्रवित या निरपेक्ष
गर्भ में
हम सच अपनी मर्ज़ी से नहीं गिरे
उड़ गयी कोयल की कूक–सा
होश जब आया
तब तक हमारी पहचान बन चुकी थी

हमने देखा मनुष्य जाति को
रोटी, नींद, काम की गिरफ्त में
फँसे लोग ज्यादातर
पशु थे भयभीत
पशु से भी ज्यादा लगे लोग
अपने को इनकार करते
जिस तरह हो न हो खाने को
भूख तो आती ही आती है
हम गैर ज्ञात
अजनबी प्यास के शिकंजे में आ गये
हमने विमर्श किया
छुटकारा पाने की कोशिश में
भीतर के अपने पशु से की दोस्ती
धीरे–धीरे हम अपनी ही
आँखों से ओझल हो गये।
छूट गयी सारी संपदा
अर्जन की क्रिया ठप्प
होना–भर शेष सिर्फ़ रह गया
कोई एक दुनिया थी
हमको नहीं पता
कब अपने हाथों से गिरकर

टूट गयी
थे जितने कोरे हम आये थे
बिना दाँत बिना याददाश्त के
कोरे के कोरे
जायेंगे--पता है।

हत्यारा

बच्चा तितली पकड़ रहा है
बच्चा नादान है
होगा
बच्चे तो होते ही हैं
तुमने वह चीख भी
देखी
नई तरह से क्या सुना
इस दृश्य को ?
बच्चा हत्यारा है
वह किसी फूल के
पैदा होने की संभावना
ख़त्म कर रहा है।

तत् त्वमऽसि

अगर वंह है तो
उस जैसा होने से
कम पर मत राज़ी हो जाना
और अगर लगता है
सच कुछ नहीं है
तब तुम्हें छूट है
जितना गिर पाओ
गिरते चले जाना।

भूमिका

दर्पण पर शाम की धूप पड़ रही है
घिर कर उतरती रात से बेखबर, ज़िद्दी, थकी एक चिड़िया
अब भी लड़ रही है अपने प्रतिबिंब से
तुम जो काँच और छाया से जन्मे दर्द को समझते हो
तरस नहीं खाना, न तिरस्कार करना
बस, जुड़े रहना इस चिड़िया की जूझन के दृश्य से
वक्त कुछ कहने का खत्म हो चुका है
जिंदगी जोड़ है तानबाने का लंबा हिसाब
बुरा भी उतना बुरा नहीं यहाँ
न भला एकदम निष्पाप
अथक सिलसिला है कीचड़ से पानी से
कमल तक जाने का
पाप में उतरता है आदमी, फिर पश्चाताप से गुजरता है
मरना आने से पहले, हर कोई कई तरह मरता है
यह और बात है इस मरणधर्मा संसार में
कोई ही कोई सही तरह मरता है
कम–से–कम तुम ठीक तरह मरना

वक्त यहाँ रहने का खत्म हो चुका है।
नदी में पड़ी एक नाव सड़ रही है
और एक लावारिस लाश किसी नाले में
दोनों ही दोनों से चूक गये
यह घोषणा नहीं, न उलटबाँसी
एक ही नशे के दो नतीजे हैं
तुम नशे में डूबना या न डूबना
डूबे हुओं से मत ऊबना
वक्त ऊबने का भी खत्म हो चुका है।
दुनिया– भर के ग्रंथगार
लंबी प्यास हैं
शुरुआत ऐसी बेचैनी के जो आज तक बस शुरुआत है
कुछ पुल बनते ही बनते ढह गये
दलदल–भर दलदल से जूझ रहा है
यहाँ हर आदमी अपनी ही देहली पर खड़ा है
अपने ही घर का पता पूछ रहा है।
तुम इससे आगे भी देखना, दृष्टि है
यहाँ कुछ पाने की चाह सूख जाये
यह तृप्ति सबसे बड़ी तृप्ति है।
कुछ ऐसा है यह भवजाल यहाँ
सब कुछ करके भी कुछ नहीं मिलता

और न कुछ करके भी सब कुछ मिल जाता है
नींद की भी कोई सीमा नहीं यहाँ
न जागृति का ही अंत हाथ आता है
किसी को नहीं पता राज़ उन रंगों का
जिनके आ जाने से
'हरे' की गुफा गूँज उठती है
रोम–रोम वृंदावन
संतुलन 'तेरा' पर ठहर जाता है
तुम तेरा पर भी नहीं रुकना
उड़े–उड़े रहना
दर्पण पर शाम की धूप पड़ रही है

फ़ना / निर्वाण

लोग पूछते हैं कहाँ उसे पाएँ हम
धरती के किस टुकड़े को घेरकर
किस क़िस्म का कैसा गुंबद बनाएँ हम
कि वह वहीं क़ैद हो जाए
कितनी ऊँचाई से, किस भाषा में, कितनी
जोर से दें आवाज़ हम
कि उसे सुनाई पड़ जाए
अजीब बात है
मछली को पानी में है मछली
पानी की तलाश है।

रोटी

जब सब अनुभव हो चुक लेगा
और कुछ करने को नहीं होगा
आसमान–बार–बार पढ़ा इश्तहार
भीतर का बाहर सब बाहर के भीतर से
अदल–बदल कर लेगा
गुल होते–होते ठहर गई होगी टिमटिम रोशनी
आँखों में, दृश्यहीन नंगापन टहलेगा
डूब गए होंगे विचारों के
सारे बेपेंदा जहाज
                    पानी इच्छाओं का उड़ लिया होगा
उत्तर निरुत्तर सब प्रश्न लापता
इतिहास अक्षरशः दीवालिया
भूगोल बेवतन हो लिया होगा
                    छाया सिर्फ ठोस
बाकी सब बुलबुला, हर विभ्रम
इस कदर चूरचूर
घर और कब्र में अंततः
समझौता हो लिया होगा
असंक्राम्य, शांत और द्वन्द्वहीन
शराब को ईश्वर व
ईश्वर को शराब की तरह पीकर
पार हो गया होगा आदमी

ईसा, मुहम्मद, राम, बुद्धों से
इस सबके बावजूद पृथ्वी पर
तो भी प्रभुत्व रोटी का
रहेगा रहेगा
भूख का जनाजा शायद ही निकलेगा।

भर्तृहरि

चिड़ियाँ बूढ़ी नहीं होतीं
मरखप जाती हैं जवानी में
ज्यादा से ज्यादा छह–सात दिन
तितली को मिलते हैं पंख
इन्हीं दिनों फूलों की चाकरी
फिर अप्रत्याशित
झपट्टा गौरैया का
एक ही कहानी है
खाने या खा जाए जाने की
तुम सहवास करो या आलिंगल राख का
भर्तृहरि ! देही को फ़र्क नहीं पड़ता
और कोई दूसरी पृथ्वी भी नहीं है

भर्तृहरि ! यों ही मत खार खाओ शरीर पर
यही यंत्र तुमको यहाँ तक लाया है
भर्तृहरि ! यह लो एक अदद दर्पण
चूरचूर कर दो
प्रतिबिंबन तब भी होगा ही होगा
भर्तृहरि ! अलग से बहाव नहीं कोई
असल में हम खुद ही बहाव हैं
लगातार नष्ट होते अनश्वर
अभी–अभी भूख, पल भर तृप्ति, अभी खाद

भर्तृहरि ! हममें हर दिन कुछ मरता है
शेष को बचाए रखने के वास्ते
मौसम बदलता है भीतर
भर्तृहरि ! तुमने मरता नहीं देखा प्यासां कोई
वह मैर लेता है, अमादा
पीने को अपना ही खून
भर्तृहरि ! तुमने मरुथल नहीं देखा।
भर्तृहरि समय का मरुथल क्षितिजहीन है
और वहाँ पर 'वहाँ' जैसा कुछ भी नहीं,
भर्तृहरि ! भाषा की भ्रांति समझो
सूर्य नहीं, हम उदय अस्त हुआ करते हैं
युगपत् उगते मुरझते
भर्तृहरि ! भाषा का पिछड़ापन समझो
जो भी है बंधन में पशु है
निसर्गतः फर्क नहीं कोई
राजा और गोभी में
छाया देता है वृक्ष आँख मूँद कर
सुनता है, धड़ पर, चलते आरे की
अर्रर्र, किस भाषा में रोता है पेड़
भर्तृहरि ! तुमने उसकी सिसकी सुनी ?
भर्तृहरि ! तुम्हीं नहीं, सबको तलाश है
उस फूल की
जो भीतर की ओर खिलता है
भर्तृहरि ! लगने जब लगता है

मिला अभी मिला
आ रही है सुगंध
दृश्य बदल जाता है।

कैलाश वाजपेयी

जन्म : 11 नवंबर, 1936 शिक्षा : लखनऊ विश्वविद्यालय से एम.ए, पी–एच.डी.। सन् 1960 में टाइम्स ऑफ इंडिया प्रकाशन संस्थान द्वारा बम्बई में नियुक्ति। सन् 1961 से दिल्ली विश्वविद्यालय के कॉलेजों में प्राध्यापन। सन् 1967 में चैकोस्लोवाकिया की यात्रा। सांस्कृतिक विनिमय कार्यक्रम के अंतर्गत 1970 में रूस, फ्रांस, जर्मनी, स्वीडन और अन्य यूरोपीय देशों में काव्यपाठ। सन् 1972 में भारतीय सांस्कृतिक केंद्र ब्रिटिश गायना जार्ज टाउन में केंद्र–संचालक के रूप में निर्वाचित। सन् 1973 से 1976 तक मेक्सिको के एल कालेजियो दे मौख़िको में विज़िटिंग प्रोफेसर। सन् 1976 के मध्य से 1977 के शुरू तक अमरीका के डैलस विश्वविद्यालय में एडजंक्ट प्रोफेसर। सन् 1983 में क्यूबा सरकार द्वारा हिंदी कविता पर व्याख्यान और कविता–पाठ के लिए हवाना में आमंत्रित। सन् 1984 में कोएनोनियन फाउंडेशन के निमंत्रण पर अमरीका के चार विश्वविद्यालयों में काव्य–पाठ। दिल्ली दूरदर्शन के लिए कबीर, हरिदास स्वामी, सूरदास, जे. कृष्णमूर्ति, रामकृष्ण परमहंस और बुद्ध के जीवन–दर्शन पर फिल्म–निर्माण। भारतीय दूरदर्शन की हिंदी सलाहकार समिति के सदस्य।

अन्य प्रकाशित कृतियां: शोधप्रबंध आधुनिक हिंदी कविता में शिल्प (1963) । कविता संग्रहः संक्रांत(1964), देहांत से हटकर (1968), तीसरा अंधेरा (1972), एल अरबोल डॅ कार्ने (1977, स्पहानी भाषा में) बियॉण्ड द सेल्फ (1978, अंग्रेजी भाषा में), महास्वप्न का मध्यांतर (1980), प्रतिनिधि कविताएँ (1988)। भारतीय कविता के संपादित—अनूदित संकलनः इंडियन पोयट्री टुडे (1976), विजन्स एंड मिथ्स (1979)। संपादित कविता–संकलनः मोती सूखे समुद्र का (1988)। दर्शन :द साइंस ऑफ मंत्राज़ (1981, अंग्रेजी और स्पहानी भाषाओं में), एस्ट्रो–कॉम्बिनेशंस (1987, अंग्रेजी भाषा में)।

नाटक : युवा संन्यासी, विवेकानंद–1991
कविता संग्रह सूफ़ीनामा–1992
सार : आख्यायिकाएं–1994
निबंध संग्रह : समाज दर्शन और आदमी–1995
एन एंथालिजी ऑफ मार्डर्न हिंदी पोएट्री–1996
प्रबंध काव्य : पृथ्वी का कृष्णपक्ष–1995
निबंध संग्रह : आधुनिकता का उत्तरोत्तर–1996
कविता संग्रह : सूफ़ीनामा (द्वितीय संस्करण)–1998
कविता संग्रह : भविष्य घट रहा है–1999

रूसी, जर्मन, स्पहानी, डेनिश, स्वीडिश और ग्रीक आदि भाषाओं में कविताएँ अनूदित–प्रकाशित।

सम्मान : हिंदी अकादमी–1995
एस. एस. मिलेनियम एवार्ड– 2000
व्यास सम्मान–2002



हद टपै सो औलिया बेहद टपै सो पीर
हद बेहद दोनों टपै वा को नाम फ़कीर ।।

विचार से अधिक दृष्टि पर भरोसा रखने की वजह से कैलाश वाजपेयी की कविता सुनिर्दिष्ट काव्य सरणि की बंधुआ कभी नहीं रही। सपाटबयानी के दिनों में भी उन्होंने 'प्रतीकों की दुनिया' (संक्रांत) बनाई जो आज तक आबाद है।

'समकालीन साहित्य'

जीवन का द्वंद्वकैलाश वाजपेयी में ऐसे ढंग से आता है कि कई बार शिनाख़्त का काम भी आसान नहीं। पर कुछ ऐसा है जो उन्हें भीतर तक उद्वेलित करता है और वे अपनी बात कहने के लिए किसी प्रतीक की तलाश करते हैं।

'जनसत्ता'

कैलाश वाजपेयी के इस संग्रह की कविताओं में दो तरह के बदलाव आए हैं एक तो कथ्य का लक्ष्य साफ है। दूसरा अभिव्यक्ति का मुहावरा पहले की तरह अमूर्त और कत्रिम नहीं। एक खास तरह की साफ़गोई है जिसे पढ़ते हुए कबीर की वाणी याद आती है।

'नवभारत टाइम्स'

प्रकाशकः
गांधी स्मृति एवं दर्शन समिति
5, तीस जनवरी मार्ग, नई दिल्ली–110011 फोन: 23012843, 23011480 फैक्स: 23011480
ई–मेल: mkgandhi@del2.vsnl.net.in वेबसाइट: www.gandhismriti.com